Chapter-2

द्वितीय अध्याय :

गीतों एवं नवगीतों के परिदृष्य एवं वैशिष्ट्य

द्वितीय अध्याय :

गीतों एवं नवगीतों के परिदृष्य एवं वैशिष्ट्य

भारतीय साहित्य में गीतितत्व : वैदिक काल में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व दिया जाता था, अतएव धार्मिक अवसरों पर, पर्वो उत्सवों के समय गीतात्मक रचनाओं का प्रयोग होता था, ऋग्वेद के ये गीतात्मक अंश पूर्ण साहित्यिक हैं और उनकी रचना कलात्मक तथा परिश्रम साध्य प्रतीत होती है इससे यह भी ज्ञात होता है कि हमारे समाज में बहुत पहले से ही लोकिक गीतों का विकास हुआ है। वैदिक काल में काव्य और संगीत में कोई विभेद नहीं था, वेद की ऋचाएँ एक विशेष ढंग से गाकर पढ़ी जाती थीं और उस पाढ्य परम्परा में छोटी-सी भूल भी अपराध समझी जाती थी। इन ॠचाओं के पढने में जिन स्वरों का प्रयोग होता था, उनके तीन भेद किये जाते हैं उदात्त, अनुदात्त और चरित। संगीत में निपुण गन्धर्व वैदिक काल में गान गाते थे, सामवेद में अनेक बातों का उल्लेख मिलता हैं जैसे - दुंदुभी, अदम्बर, कंधवीणा, वीणा आदि । वैदिक युग सामूहिक संस्कृति और समाजिक चेतना का काल था अतः वैदिक ऋचाओं के सामूहिक ढंग से सस्वर संगीतपूर्ण पाठ की व्यवस्था थी।

ऋगवेद में अनेक ऋषियों ने प्राकृतिक शक्ति को छाव, पृथ्वी, उषा, सन्ध्या का मनोज्ञ गृहण किया है, उन्होंने प्रकृति के शक्तिशाली उपादानों की प्रसन्नता हेतु एक ओर तो उनकी प्रार्थना और प्राकृतिक सौन्दय से प्रेरित होकर उसकी मनोज्ञ अभिव्यंजना की है, प्रकृति के अनेक रम्य वर्णनों के साथ ऋग्वेद में ऐसे भी अनेक स्थल है जहाँ मानवीय भावनाओं का सुन्दर गीतात्मक स्वरूप चित्रित किया गया है। इन्द्र विषयक अनुरक्ति के

वर्णन, पुरूरुवा का उर्वशी के प्रति आशक्ति के चिहण तथा यम-यमी संवाद को पढकर गीतात्मक प्रसंगों का बोध हो जाता है। उपाला और अमी ने जिस आकुलता से अपने प्रेमी से मिलने की कामना की है, पुरूरुवा में उर्वशी के वियोग में जिस तीव्र वेदना का अनुभव किया है वह बिल्कुल स्वाभाविक है। भावों की यह तीव्र वेदना और आत्म निवेदना सीधे हृदय से संबंधित है, ये वैदिक ऋचाएँ गेय तो हैं ही, साथ ही इनमें प्रथम पंक्ति की पुनरावृति की परम्परा भी दिखाई पड़ती है, जो आगे चलकर टेक के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी, गीत संरचना की आधार भूत पहचान है।

वैदिक काल में संगीत का महत्व था। सामवेद में उसकी समृद्वि का विवरण है, यजुर्वेद में माने गये तीन वैदिक स्वर यहाँ सात स्वरों में पल्लवित हो गये थे, आगे चलकर इन स्वरों के परस्पर सम्बन्ध स्थिर किये गये, जो इस प्रकार हैं - वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी इस के साथ ही स्वरों की बाइस स्तुतियों की भी योजना हुई लेकिन गीतों की अलग से कोई चर्चा नहीं की गई । कुछ समय बाद भरतभुनि ने गीतों को नाटकों में समाविष्ट करने का आदेश दिया क्योंकि इनकी उत्तम अभिव्यंजना शक्ति नाटकों की सफलता में पूर्ण सदायक प्रतीत होती हैं ।

वेदों के अनन्तर मध्यकालीन संस्कृत काव्य धाराओं को देखें तो मेघदूत में गीतात्मकता दिखाई देती है केवल इस आधार पर उसे गीतिकाव्य नहीं सदा जा सकता जहाँ कथा के साथ-साथ यक्ष की विव्हलता और प्रेम के अतिरेक की भी अभिव्यक्ति हुई है केवल उन्हीं अंशों को गीत की विशेषताओं से समन्वित माना जा सकता है। कालिदास ने विक्रमौर्वशीम के चौथे अंक में गीत लिखकर उसके रागका भी निर्देश कर दिया है। मालविकाग्निमिद्र के पहले और दूसरे अंकों में संगीत और अभिनय की चर्चा की है, इस से कवि के संगीत बोध का पता चलता है। ऋतुसंहार के प्रकृति वर्णन में कुछ अंश गीतात्मकता से अवश्य पूर्ण हैं, फिर भी उन्हें गीतिकाव्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। बहुत से विद्वान श्रृंगारतिलक को गीतिमय रचना मानते हैं, लेकिन वह कालिदास की रचना है, इसमें भी संदेह है।

संस्कृत साहित्य में अनेक स्तोत्र रचे गये हैं। वैदिक सूत्रों के रूप में कई स्त्रोत मिलते हैं जो शिव, विष्णु, सूर्य की आराधना के लिए लिखे गये हैं, इसी परम्परा में वाण का

चण्डीशतक मयूर का सूर्यशतक पुष्यदन्ताचार्य का माहेम्न स्त्रोत, जैन मानतुंग का भक्ताभार स्त्रोत, शंकराचार्य की सौन्दं लहरी और पंडित जगन्नाथ की गंगालहरी आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं, स्त्रोतों को स्वर पूर्वक गाकर पढा जाता है, इस में इनकी गीतात्मकता अधिक स्पष्ट लगती है।

संस्कृत के आयार्यों ने काव्य कोटि में हीनतर रचना को खण्डकाव्य माना है। इसे काव्य का खण्ड माना जा सकता है। मेघदूत ऐसी ही रचना है, जिसे अनेक समीक्षक गीतिकाव्य मानते हैं, संस्कृत के स्त्रोत शतक तथा कुछ अन्य प्रकार के मुक्तक भी गीति के अंतर्गत रखे गये हैं। मेघदूत में यक्ष ने मेघ को मनुष्य जैसा मानकर उस के द्वारा अपनी प्रियतमा के पास संदेश भेजने की अपनी भावनाएँ हैं और इस प्रकार इस रचना में परोक्ष रूप से अध्यान्तिरिकता का समावेश हो गया हैं। यहाँ भावावेश को प्राप्त हुई प्रकृति के रम्य, उदार एवं सामंजस्यपूर्ण चित्र अंकित किये गये हैं इन कारणों से इस रचना में गीतात्मकता की सृष्टि हो गई है।

स्त्रोत काव्यों में पाण्डित्य एवं रमणीयता का विचित्र सम्मिश्रण होता है। इन रचनाओं का सम्बन्ध देवी देवताओं से होता है। इसलिए इनमें भक्ति और काव्य सौष्ठव दोनों का सौन्दर्य होता है और कवि की निष्ठा के माध्यम से आध्यामिकता का प्रवेश हो जाता है। रामायण, महाभारत, कुमार संभव आदि महाकाव्यों में भी स्त्रोत-काव्य की योजना की गई है। ये तथा पुराणों की रचनाएँ गेय होती हैं, भावपूर्ण होती हैं। इनमें चमत्कार विधान की अपेक्षा सहजता को अग्रता दी जाती है अतः ये गीतियों के वर्ग में स्थान पाने की अधिकारिणी हैं।

कश्मीर निवाशी क्षेमेन्द्र ने ग्यारवीं शताब्दी में दशावतार चरित की रचना करते हुए गोपी गान पद शैली में लिखा है, इसीलिए इनका बड़ा महत्व है, लेकिन संस्कृत साहित्य में गीत काव्य की परंपरा के प्रवर्तक 12वीं शती में उत्पन्न जयदेव माने जाते हैं इन्होंने गीत-गोविन्द की रचना के लिए संस्कृत के प्रचलित मात्रिक छन्दों को ही अपनाया और कलापक्ष को चरमोन्नति पर पहुँचा दिया। छन्दों को रागों और तालों के अनुसार व्यवस्थित करके पूर्ण गेय बना दिया और लोक गीतों की प्रसिद्धि को साहित्य को पुनःस्थापित कर दिया भक्तामाल में इन्हें कृष्ण भक्तों में माना गया है। इनके जन्म स्थान पर प्रतिवर्ष एक मेला लगता है और कहा जाता है कि प्रताप सूर्यदेव ने अपने समय में वैष्णव भक्तों को जयदेव के गीतों को गाने

का आदेश दिया था। गीत गोविन्द के गीतों में गीति-नाटक दोनों की विशेषताएँ मिलती हैं। इनमें राग और ताल का निर्देश हैं, क्योंकि ये संगीत तथा नृत्य के साथ गाये जाते थे। जयदेव ने कोमल कान्त पदावली में जनसाधारण के गीतों की परम्परा की रचना की। कवि ने राधा-कृष्ण के प्रेमका अत्यन्त सहज वर्णन किया है। कृष्ण को ईश्वर मानते हुए भी उनकी विशाल क्रीडा का जो स्पष्ट वर्णन किया गया है, वह संस्कृत कवियों के लिए कोई नई बात नहीं थी। गीत-गोविन्द में संगीतात्मकता, भावगत मनोज्ञता, कवि की आत्मविव्हलता, कोमल कान्त पदावली, छन्दों का उचित प्रयोग और कलात्मकता आदि सब कुछ सराहनीय है। इसमें उच्चकोटि की ध्वनि और अर्थ का समन्वय होता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इसका प्रभाव धर्म और साहित्य दोनों पर पड़ा। चैतन्य महाप्रभु, चण्डीदास, विद्यापति, सूरदास सभी इससे प्रभावित हुए ।

गीत काव्य का लोक मंचीय विकास हमें रीति काव्य में मिलता है। रास, रासो या रासक काव्य की अधिकांशत जैन साहित्य में समाहित है। रास वाद्य स्वयं रास से उद्भूत है। अर्थात रसवादी अभिव्यंजना ही रास की निर्मिति का मूलाधार है, सामाजिक रसज्ञ को यह काव्य का रस आकर्षित करता है और वह इसी रागात्मक प्रस्तुति से जुड़े मंचीय रास या रासों के लिए सम्मोहन की स्थिति पैदा कर लेता है। अर्थात रीतिकाल की रागात्मकता रास या रासो कवि प्रमुख प्रभावान्वित हैं, यह प्रेक्षक और प्रेक्षणीय रास के आपसी रुझान की मध्य कड़ी है। और विरह की मार्जिक अभिव्यंजना इस गीतों में देखी जा सकती है। रहस्य भावना से परिपूर्ण गीतों में श्रृंगार का उदास रूप विधमान होता है।

5) वैचारिक और दार्शनिक गीत : वैचारिक गीतों में आदेशात्मक और दार्शनिकता का प्राधान्य होता है। गीतों में जीवन की आशा विषयक रचनाएँ आती हैं। इन गीतों की परम्पर विश्व के समग्र साहित्य मे देखने को मिलती हैं।

6) भक्ति या विनयगीत : भक्तिकाल में अमरछाप के प्रायः सभी कवियों तथा गीतकारों न भक्ति तथा विनयगीत रचे हैं। सूरदास तथा तुलसीदास ने अनेक पद अपने आराध्य के प्रति समर्पित किये हैं। भक्ति गीतों में श्रद्धा एवं प्रेम के योग से निर्मित रागात्मक आवेश की प्रधानता होती है। विनयगीतों में पूजा, अर्चना, उपासना तथा निवेदत की भूमिका पर भक्त अपने आराध्य के प्रति समर्पण की भूमिका ग्रहण करता है। वैदिक गीतों में भक्ति

और विनय का उत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है।

7) शोक गीत : शोकगीत मूलतः किसी प्रिय व्यक्ति के निधन को भूमिका पर रचित होते हैं। इन गीतों में कवि विवेक और मनन शीलता की भूमिका पर अपने प्रिय से सरस समन्वय स्थापित करते हुए उसकी स्मृति में पूरी तरह डूब जाता है। राष्ट्रीय और व्यक्तिगत इन दोनों ही भूमिकाओं में हमें शोकगीत प्राप्त होते हैं। राष्ट्रीय भूमिका पर किसी लोकप्रिय राष्ट्रीय नेता की मृत्यु से निर्मित दृश्य और पीड़ा को शोकगीत में वाणी दी जाती है। वैयक्तिकता पर लिखे शोकगीतों में निराला की सरोज स्मृति हिन्दी साहित्य की एक उत्कृष्ट रचना है।

गीतियों की विशेषताएँ : गीतिकाव्य लिरित के तत्व बोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है, जिसका मूलभूत आधार गीत अथवा गीतकाव्य है।

गीति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1) संगीतात्मकता : गीत का सीधा सम्बन्ध संगीत से है। संगीतात्मकता गीतकाव्य की मौलिक विशेषता है। गीति काव्य के लिए यह आवश्यक है कि उसमें छंद तथा लय का निर्वाह इस प्रकार किया जाय कि उसे गाया जा सके संगीत गीत का प्राण है, क्योंकि गीतों की उत्पति मानव की रागात्मक मूल भावों की तीव्रता का ही परिणाम होते हैं। गीत तथा संगीत अन्योन्याश्रित हैं। वैष्णव भक्तिकाव्य में गीतिकाव्य की प्रायः समस्त विषेशताएँ विधमान हैं। सोलहवीं से अठारहवीं शती के मध्य काव्यरचना करने वाले संतों, भक्तों का काव्य विभिन्न राग-रागिनियों के मादक स्वरों से झंकृत होता है। भक्तिकालीन कवि काव्यरचना के साथ-साथ उच्चकोटि के संगीत भी थे। उनके अधिकांश पद शास्त्रीय राग रागिनियों से युक्त थे, कबीर, सूर, मीरा, तुलसी आदि इसी श्रेणी में आते हैं। सूरदास के गीतों में आसावरी, केदार, धनाक्षी, गौरी, सारंग, सोरठ, नट, गूजरी, बिलावल तथा मारर आदि रागों का प्रयोग किया गया है। उनकी रचनाओं में नादसौन्दर्य को स्वाभाविक रूप से संचार हो गया है।

सोभित कर नवगीत लिए
घुट्टन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप लिए ।

सूरदास के अतिरिक्त तुलसी मीरा आदि के काव्यों में भी संगीतकता देखने को मिलती है। उनके पद विभिन्न राग-रागनियों से अलंकृत हैं।

2) भावान्विति : भावान्विति से आशय भाव की अन्विति अर्थात भावात्मक या संवेगात्मक एकता से है। गीति रचना में भावों की प्रधानता होती है तथा उसका छोटा-सा कलेवर केवल भावोत्तेजन के लिए उपयुक्त होता है। गीत की प्रथम पंक्ति द्वारा जिस भाव की अभिव्यक्ति की जाती है, अन्य समस्त पंक्तियाँ भी प्रायः उसी भाव की पोषक होती हैं। हिन्दी कृष्णकाव्य तथा रामकाव्म से सम्बद्ध गीति रचनाओं में भावनाओं का उन्मेष सहज रूप में हुआ है। सूर के गति काव्य में वात्सल्य तथा श्रृंगार संबंधी भावनाओं का चित्रांकन अनुभूति युक्त शब्दों द्वारा उपस्थित किया गया है। प्रगति शील कवियित्री मीरा के गीतों में भी गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषता के रूप में भावात्मक एकता सहज, सुलभ है। उनकी पदावली में अनेक पद प्रभावपूर्ण तथा भावान्विति के सुन्दर स्वरूप को सफलता पूर्वक उदघाटित करते हैं।

हिन्दी गीतों का प्रारंभिक विकास अमीर खुसरो की रचनाओं में देखा जा सकता है। उन्होने फारसी लहले में भारतीय संस्कृति और सभ्यता को सूपायित किया था। उनका काव्य लोक भोग्य था जिसमें हिन्दी के प्रारंभिक रूप की झलक देखी जा सकती है।

अमीर खुशरो :

हिन्दी में गीत परम्परा प्रारंभिक भुमिका अमीर खुशरो द्वारा बनी। खुशरो संगीतज्ञ और कवि थे और साथ ही लोकगीतों की शैली का भी पूर्ण बोध था। भारतीय साहित्य में गेय गीतों की प्रमुख परंपरा भी खुशरो के गीतों में देखी जा सकती है। वैष्णव कवियों ने इस शैली में कोई सौ वर्षों तक काव्यरचना की। विद्यापति, कबीर, तुलसीदास, सूर, मीराबाई, हितहरिवंश, भारतेन्दु हरिशचन्द्र तक इसी परम्परा का निर्वाह देखा जा सकता है। यह लोक भोग्य गीति विधा थी।

अमीर खुशरो के गीतों में भावों की तीव्रता के साथ ही संगीतात्मकता है और उनका तज लोकोन्मुखी ही है। डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने अपने प्रबन्ध गीतिकाव्य **उद्‌गम और विकास** में एक गीत का उदाहरण प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है-

मेरा जोबना नवलेश भयो है गुलाल
कैसे गरदोनी बक्स मोरी माल
मजामुदीनी ओलिया को कोई समझाये
जो जो मनाऊ वह तो सूजा ही जाये ।
मेरा जोबना नवलेश भयो है गुलाल
कैसे मर दीनी बकस मोरी माल ।

विद्यापति :

अमीर खुशरो के अनन्तर गीति काव्य में सबसे महत्वपूर्ण स्थान मैथिल कोकिला विद्यापति का है। विधापति की लोकप्रियता का प्रमुख आधार मैथिली भाषा में रचित पदावली है। उनकी रचना पर गीत गोविन्द का पूर्ण प्रभाव था विद्यापति संगीत के पूर्ण पंडित थे। इसलिये इनके पदों में उच्चकोटि का संगीत मिलता है, विद्यापति के संगीत बोध से ही प्रभावित होकर महाराज शिवसिंह ने सुमति कायस्थ के पुत्र जयन्त को इनके पास संगीत की शिक्षा के लिये रख छोड़ा था, उसी के लिए कवि ने पदावली में रागों का निर्देश भी कर दिया था।

पदावली में कवि ने सौन्दर्य वर्णन के लिये उन्हीं उपमानों को चुना है जो पहले से संस्कृत साहित्य में चले आ रहे थे। उनके गीतो में अलंकार योजना और चमत्कार विधान भी अधिकता देखने को मिलती है। जैसे -

ए सखिदेखलि एक अवरुप । सुनइत मानबि सपन सरूप ।
कमल जुमल पर चाँद की माला। तावर उपजल तरुन तमाला ।
तापर बेढलि विजुरी लता । कालिन्दी तट धीरे चल जाता ।
साखा शिखर सुधाकर पांति । ताहि नव पल्लव असूनक भांति ।
बिमल बिम्ब फल जुगल बिकास । तापर कीट थीर कर बास ।
तापर चंचलखंजन जोर। तापर सांपिनि झांपल मोर ।
ए सखि रंगिनि कहल निसान । होइत पुनि मोहहरल गयान ।
कवि विद्यापति एक रस भान । सुपुसूष भरम वुहू भलजान ।

रास : रास, रासक, और रासो एकार्थवादी हैं, हेमचन्द्र ने इसे गेय काव्य के अन्तर्गत माना है और साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने इसे उपरूपकों की कोटि में रखा है। इसमें लधुगीत गाये जाते थे और नर्तक उनके भावों को नाचकर प्रकट करते थे। अतः यह स्पष्ट है कि नृत्य, वाद्य और गान इन तीनों की मधुर त्रिवेणी संगम है रास। रास के गायक मधुर स्वर में बाँसुरी बजा बजाकर ताल के साथ नाँचते हुए अभिनय भरते थे और यह अभिनय देवालयों में भी होता था। ये रास गेय छन्दों जैसे अड़िल्ल रास, पद्धरिका आदि में लिखे जाते थे, कड़वाकों में विभाजित होते थे और आकार में लघु होने के कारण पूर्णतया अभिनीत होते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्य की कोई विशेष शैली ही विकसित होकर श्रीमदभागवत का रास बन गई है। प्राचीन काल में धार्मिक उत्सवों में नृत्य को स्थान प्राप्त हो गया था । उसकी परम्परा विकसित होती रही और भरत मुनि के समय में तांड़व नृत्य के अनेक भेद हो गये थे, जिनमें पिंजी बंध प्रमुख है। इसमें आठ, बारह या सोलह स्त्रियाँ सामूहिक नृत्य करती थीं। यही पिंडीबंध कलान्तर में रास अथवा रासक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। रास की अभिनेयता, गेयता, वाद्यों की संगति तथा मार्मिक एवं प्रभावशाली घटनाओं की स्वीकृति से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये प्राचीन काल की प्रतिनिधि गीति रचनाएँ हैं। इनका विकास अपभ्रांत साहित्य में ठीक उसी प्रकार हुआ जैसे, लिरिक का विकास युरोपीय भाषाओं में हुआ है।

यद्यपि बहुत दिनों तक वाद्य, नृत्य और गान तीनों रस मे समान रूप से बने रहे फिर भी धीरे-धीरे इसका स्वरूप परिवर्तित होने लगा। रास का प्रचार नवीं शती में ही हो चुका था और पन्दहवीं शताब्दी तक इस के दो भिन्न स्वरूप दृष्टि गोचर होने लगे-अभिनय प्रधान फागुकाव्य और वसंतकाव्य ! काव्यगुण प्रधान विस्तृत रासो ग्रंथ रास का उल्लेख विस्तार पूर्वक हरिवंश पुराण में प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में भी इस की चर्चा है और श्रीमद भागवत के पाँच आध्यायों में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। ऐसा विश्वास है कि इस के प्रवर्तक भगवान श्रीकृष्ण थे और उन्होंने यमुना के तट पर शरद पूर्णिमा की रात्रि में गोपियों के साथ इस नृत्य का आयोजन किया था ।

रास के प्रकार :

1) वैष्णव रास : रास और रासान्वयी काव्यों पर दृष्टि डालने से उसके चार वर्ग

दिखाई पड़ते हैं। वैष्णव रास, जैन रास, ऐतिहासिक रास और अन्य प्रकार के रास जयदेव के गीत गोविन्द से प्रभावित चैतन्य महाप्रभु ने रासलीली का खूब प्रचार किया और वल्लभाचार्य, हितहरिवंश और स्वामी हरिदास ने ब्रजभूमि में रासलीला की व्यवस्था की। यहीं रास आज भी गुजरात में गरबा-नृत्य और पंजाब में स्वांग के रूप में वर्तमान है। रास के साथ नाटक पूर्ण प्रभावित हुए और गीति गोविन्द का प्रभाव रास और गाथा दोनों पर समान रूप से पड़ा। उत्कल में जगन्नाथ जी का मन्दिर इसका केन्द्र बना रहा और सौराष्ट्र में तो वह परम्परा हजारों वर्षों से चली आ रही है।

जयदेव के गीत गोविन्द के प्रभाव वश सारे देश के मन्दिरों में कीर्तन की परम्परा चल पड़ी जनपद की बोलियों में भी कीर्तन रचना प्रारम्भ हो गई। विद्यापति के पदो से प्रभावित बंगाली कवियो ने मैथिली, बंगला, और व्रजभाषा के योग से एक मिश्रित भाषा की सृष्टि की, इसे ब्रजबोली कहते हैं। इस भाषा में कितने ही कीर्तन रचे गये । अवभ्रंश भाषा में लिखित वैष्णव रास नहीउपलब्ध होते जयदेव के अनन्तर नरसिंह महेता, सूरदास, नन्ददास तथा कई बंगाली कवियों द्वारा प्रणीत वैष्णव रास उपलब्ध होता है। वैष्णव रसाकारों के आलावा अन्य कवियों ने भी देश के विभिन्न भागों में रास का प्रचार किया। ब्रज में अष्टछाप के कई कवियों तथा हितहरिवंशजी ने इसकी धूम मचा दी। गुजरात में नरसिंह और पंजाब के प्रसिद्ध वीर गुरू गोविन्द सिंह ने रास-रचना की ।

2) जैन रास : तीर्थंकरों तथा जैन साधकों के आत्मसंयम एवं आसक्ति का वर्णन करने के लिए अनेक जैन रासों की रचना हुई। ईसवीं दसवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच ऐसी रचनाएँ लिखी गईं। पहले रास की रचना केवल अभिनय के लिए ही होती थी, किन्तु क्रमश ये काव्य रूप में विकसित होने लगे और इनका प्रणयन धर्म प्रचार के लिए होने लगा। ये रास जनभाषा में लिखे गये और इनमें संगीत, नृत्य तथा काव्य-तीनों का योग रहता था, जैस रासाकार लोकगीतों में व्यवहार में आनेवाली राग-रागिनियों का आश्रय लेकर नृत्य के उपयुक्त काव्य रचना करते थे। वैष्णव रास तो बीच में ही समाप्त हो गाया था, लेकिन जैन रासों की परम्परा प्राचीन काव्य से ही चली आ रही है और आज भी अनेक जैन मुनि रास रचना करते हैं। इन रचनाओं में कवित्व की कमी हो सकती है किन्तु लोकगीत का सरस स्वरूप इनमें सर्वद्र विद्यमान रहता है और विशेषकर स्त्रियों में प्रचलित राग रागिनियों को

स्वीकार कर गीत-रचना की जाती है। इनमें आत्मानुभूति की अल्पता कोई मुश्किल नहीं उत्पन्न कर पाती।

जिनपति सूरिके शिष्य सुमतिमणि ने नेमिनाथ रास की रचना की है। संवत 1171 विक्रम में जिनदत्तसूरि ने उपदेशरसायन रास की रचना की.। शालिभद्रसूरि रचित भरतेश्वर बहुबलि रास और बुद्धिरास भी प्रसिद्ध जैन रास हैं और भी कई जैन रास प्राप्त होते हैं जिनमें गमसुकुमाल रास तथा आबूरास अधिक प्रत्रिद्ध है।

3) फागु रास : ईसा की चौदवीं शती में रास की एक नवगीत पद्धति का आविर्भाव हुआ, जिसे फागु रास करते हैं। रास की तरह इसकी समप्ति भी शांत रस में होती है। इसमें संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन होता है। फागु लोकसाहित्य के अन्तर्गत आते हैं। जैन साहित्य में अनेक फागु रास मिलते हैं, जिनमें स्थूलिभ्रद्र फाग, नेमिनाथ फाग, और जबूरस्वामी फाग अधिक प्रसिद्ध हैं। फागु में छन्दों को गेय बनाने के लिए अरे, अहं, लगाया जाता है। फागु द्वारा कवियों ने प्रेक्षकों तथा पाठकों के जीवन को महान बनाने की चेष्टा की है। फागु के दो प्रकार हैं, प्रथम अभिनय के लिए लिखे गये फागु और द्वितीय काव्य के रूप में उपलब्ध वृहत फागु। एक विशेष प्रकार के फागु को गीत कहते हैं। इसमें कोई कथा नहीं होती और संभीत के सहारे धर्मोपदेश की व्यवस्था की जाती है। ज्ञानगीत के सहारे धर्मोपदेश की व्यवस्था की जाती है। ज्ञानगीता चतुर्भुज की लिखी हुई ऐसी ही रचनाएँ हैं। इसी परम्परा में जिनविजय ने नेमिनाथ भ्रमर गीता की रचना की है, जिसमें वियोगिनी राजुलि के विरह का वर्णन किया गया है।

4) एतिहासिक रास : बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि चन्द्रवरदाई ने पृथ्वीराज रासो नामक ग्रन्थ की रचना की। गीत गोविन्द के प्रभाव वश वैसी ही संगीत पूर्ण शैली में रास या रासक नाम की अनेक रचनाएँ लिखी गयी। ये देशी भाषाओं में प्रणीत थीं, वैष्णवरासों में भक्ति रस, जैन रासों मे शांतरस, ऐतिहासिक रासों में वीररस और सन्देश रासक में वियोग के उत्कृष्ट विरह के साथ ही साथ सभी प्रकार की रास रचनाओं में गेयता और संगीत की मधुरता वर्तमान है। इनमें अपेक्षाकृत वर्णनों का अभाव और भाव राशि की प्रचुरता है और नृत्य एवं बाध की संगति प्राप्त कर इनमें गीतितत्व का सम्यक प्रवेश हो गया है।

पद : अपभ्रंश लोकभाषा थी, अतएव इसमें गेय काव्यकी रचना हुई प्राकृत पेंगलन

में उदाहरण के निमित छन्द संग्रहीत हैं, उनमें कुछ ऐसे भावपूर्ण अंश भी हैं जो गेय है यथा

जिणि कंस विणासिअ किति पिआरिसअ
मुढढि अरिढढ विणासकरे गिरि हत्य घरे ।
जमलज्जुण भंजि अपअ भर गंजिय
कालिय कुल संहार करे जस भुवण भरे ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि गीत गोविन्द में इस शैली के छन्द जयदेव ने भी लिखे है। अपभुश के प्रचार के तीन शताब्दी बाद उसका वह स्वरूप दिखाई देता है जिससे हिन्दी का जन्म हुआ । ग्यारहवीं शती के राजा मुंज ने कुछ ऐसे दोहे लिखे हैं, जिसमें उसके और मृणाल वाही के प्रेम की चर्चा है। इनमें प्रेम की विभिन्न दशाओं की सुन्दर अभिव्यंजना है। कुछ भोज के भी ऐसे दोहे मिलते हैं। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द्र ने अपने सिद्धहेम शब्दा-नुशासन में उदाहरण के निमित्त इन दोहों का संग्रह किया है। इसी प्रकार के दोहों का संग्रह सोमप्रभि सूरि और जैन आचार्य मेरूतुंग द्वारा भी प्रस्तुत किये गये हैं। अपभ्रंश के श्रृंगारी अंश ढोलामारूरा दोहा में देखने को मिलते हैं, जो विक्रम की तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की रचना मानी जाती है। यह लोकगीतों के अधिक समीप है। सूर्यमल की वीरसतसई और डिंगल के दूहों में भी गीतात्मक मुक्तक दिखाई पड़ते हैं।

इस युग में जिन कवियों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जाता है - वज्रयानी सिद्ध संख्या में चौरासी माने जाते हैं। ये जन साधारण के सम्पर्क में रहते थे और इससे इन्हें अपने मत के प्रचार में सुविधा उत्पन्न होती थी । इन सिद्धों की रचना में संयम का अभाव दिखाई देता है। परन्तु नारी का अधिक महत्व बताया है। नारी को ही साधना का मूल माना गया है। इन बोद्ध सिद्धों में कुछ अच्छे कवि भी थे, जैसे सरहवा, कणहवा, शबरका आदि। सरहवा ने हठयोग का प्रतिपादन करते हुए तत्कालीन पाखण्ड का विरोध किया । कणहया नवीं शाताब्दी के मध्य में उत्पन्न हुए थे। इनकी रचना सुगठित और व्यंजना अधिक है। इन कवियों ने टेक की परम्परा को अपनाया, रागका निर्देश किया और छन्दां के पद-परम्परा, टेक का प्रयोग राग निर्देश की व्यवस्था तथा अन्त में नाम रखने की प्रणाली का उदगम इन्हीं सिद्धों की रचनाएँ हैं।

अवेजीश के चर्चा राग रागिनियों में बंधे हैं। चर्चा में सरहवा के छंद संख्या दो में

गूजरी, संख्या आठ में रास बैसाख, संख्या दस में राग भैरवी, शबरफ के छंद संख्या 28 में राग बलाड़िड, जेम्बिया के छंद संख्या 14 में राग धनाश्रयी का उल्लेख मिलता है। सिद्धों के समूचे छन्द इसीप्रकार के रागबद्ध हैं। इनकी शैली का प्रभाव परवर्ती कवियों की काव्य शैली पर बहुत पड़ा।[2]

नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथ माने जाते हैं। इन्होंने पूर्ववर्ती सिद्धों की परम्परा में परिवर्तन किया, जिस के परिणाम स्वरूप साधना के क्षेत्र मे नारी का महत्व कम होने लगा। ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हुई और कामवासना पर रोक लगा दी गई तथा मन को वश में रखने का आदेश दिया गया, गोरखनाथ के पद पूर्णतः साम्प्रदायिक हैं। इनमें सम्प्रदाय संबंधी साधना की ही विस्तृत विवेचना है, फिर भी पदो के बाह्यस्वरूप में उन्होंने जो सुधार किया, सारंगी और किंनरी के साथ पदों के गाने की परम्परा जो इस सम्प्रदाय के योगियों ने चलाई, वह मीति के कलेवर के किताब सी एक प्रक्रिया ही समझी जायेगी

गोरखबानी में पदों की शंबदी कहा गया है और इन पदों का अदिकाल में खूब प्रचार-प्रसार था। पदों की रचना के साथ ही राग निर्देश की प्रथा कबसे चल पड़ी थी, इस का ठीक से अनुमान नहीं लगाया जा सकता । लेकिन ऐसा अंदाजा लगाया जाता है कि दशवीं शताब्दी से ही रागों का प्रचलन हो गया था। कृष्ण लीला से सम्बंधित पदों का आरंभ कब से हुआ इसका भी निश्चित अनुमान नहीं है, परन्तु यह कहा जा सकता है कि पहले से ही लोकभाषा में ऐसे पद लिखे जाते थे और जयदेव ने उनका अनुकरण किया। कुछ लोगों ने ऐसा माना है कि पद लिखने की परम्परा पूर्वीदिशों से आयी है लेकिन ग्यारहवीं शताब्दी के कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने अपने संस्कृत-ग्रंथ दशावतार वर्णन में वियोगिनी गोपियों के गोविन्द गुणगान का वर्णन अपने पदों मे किया है, जो मात्रिक छन्द में हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पद सर्वत्र प्रचलित थे। अवजीश में प्रचर्तित पद रचना की परम्परा हिन्दी साहित्य में उत्तरोतर विकसित होती रही और कई सौ वर्षोतक सन्त एवं भक्त कवियों ने भाव प्रकाशन का इसे ही प्रमुख माध्यम बना रखा था । साहित्य के साक्षर समाज में भी इस का प्रचार था। सूर के पद ब्रजभाषा में प्रथम प्राप्त पद हैं, किन्तु ये किसी प्रचलित पद-परम्परा की पूर्णता के द्योतक हैं। प्रारम्भ के नहीं। भले ही वह साहित्य से दूर समाज में प्रचलित रही हों ।

गीत : हिन्दी में गीत का जन्म मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्तियों से संलग्न रहा है अर्थात

मनुष्य के हृदय में जिस दिन से रागात्मक संवेदनाओं ने जन्म लिया उसी दिन से गीत और छन्द का सृजन प्रारंभ हो गया। गीत की प्रथम पहचान उनकी गेयता है यह गेयता हर्षजन्य भी हो सकती है और अवसाद जन्य भी। भारतीय संस्कृति में सुख और दुख दोनों ही संवेद्य स्थितियों में गीत का दखल रहा है। गीत वस्तुत हमारे समाजिक सरकारों के संलग्न रहा है जहाँ सम्पन्नता भी है और अभावग्रस्त बैचैनिया भी। वैसे तो भारतीय संस्कृति में गीत का जन्म कारूविक उदभावना से संलग्न माना गया है। महाकवि वाल्मीकि के द्वारा कोंचवध प्रसंग हो अथवा समिद्रानंगदन पत के द्वारा उदधोषित वियोगी कवि का सन्दर्भ भी इन स्वरों का करूणा का अभिप्राय शोक न होकर आंतरिक संवेदनाओं से संलग्न अभाषित होता है। धीरे धीरे व्यक्तिगत और समविटगत दोनों ही धरातलों पर मानवीय संवेदनाओं के विकास संदर्भो में जो शोक और हर्ष के क्षण दाखिल हुए हैं उन्हें रोकर या गा कर अभिव्यक्त करने का नाम गीत है ।

गीतों का वर्गीकरण : गीतों का वर्गीकरण अनुभूति और अभिव्यंजना के आधार पर किया जा सकता है। आधुनिक हिन्दी समीक्षकों ने गीतों के वर्गीकरण में वस्तु और कला की दृष्टि से भेद न कर उनका विभाजन प्रस्तुत किया है। डॉ. गुलाब राय ने गीतों का वर्गीकरण इस रूप से किया है - चतुरदशपक्षीं सम्बोधन प्रगीत, शोकगीत, व्योग्य गीत, विचारात्मक तथा उपदेशात्मक गीत इत्यादि रूपों में किया है। 3 क्षेमेन्द्र सुमन और योगेन्द्र कुमार मलिक ने गीतों को बारह रूपों में विभाजित किया है। यथा प्रेमगीत, व्यंग्यगीत, धर्मिकगीत, शोकगीत, युद्ध गीत, वीर गीत, नृत्यगीत, सामाजिक गीत, उपालम्भगीत, गीतिनाट्य, सम्बोंधन गीत, चर्तुदशगीत आदि ।

1) प्रेम गीत : प्रेम की अनुभूति मानवजीवन की सबसे सुन्दर कोमल, स्निग्ध तथा वर्णनातीत अनुभूति है। वह अनादि, शाश्वत तथा समष्टिगत है। उसे हमारी सम्यता और संस्कृति के विकास का सारांश भी कहा गया है। 15 सौन्दर्यानुभूति का दूसरा नाम प्रेम है, वैदिक गीतो में यम, यमी के प्रेम प्रसंगों को प्रधानता मिली है। संस्कृत काव्य में ऋष्तु संहार, आर्यासप्तशती, गाथासप्त शती अमरूक शतक, मेघदूत इत्यादि में प्रेमतत्व की ही प्रमुखता है। गीत-गोविन्द में प्रेमगीतों की ही सुमधुर व्यंजना हुई है। हिन्दी में विद्यापति से लेकर आधुनिक स्वेच्छतावाद तक प्रेमगीतों की प्रौढ़ परम्परा चली आ रही है।

2) प्रकृतिगीत : प्रकृति को तो काव्य की जननी के रूप में स्वीकार किया गया है। आदिकाल से हीं प्रकृति कवियों की प्रेरणाभूमि रही है, हिन्दी में शुद्ध रूप से प्रकृति गीतों की रचना स्वच्छन्दवादी युग की देन है। आलम्बन, उद्दीपन तथा मानवीकरण इत्यादि अनेक रूपों में स्वच्छन्दता वादी कवियों ने प्रकृति को एक विराट रूप में काव्य चिहित किया है।

3) राष्ट्रीय गीत : राष्ट्रीय गीतों की मूल प्रेरणा देशप्रेम है। राष्ट्रप्रेम एक समष्टिगत चेतना है। इस के फलस्वरूप उसमें जनसेवा, जनसत्ता और जनसंस्कृति की भावनाएँ प्रधान होती है। हिन्दी भाषा में राष्ट्रीय गीतों का प्रचलन आधुनिक काल में हुआ है। बीसवीं शती के सभी कवियों ने प्राप राष्ट्र के गीत लिखे हैं इनमें मुख्य रूप से मैथिली शरण गुण तथा माखनलाल चतुर्वेदी का नाम लिया जाता है। डॉ. सुधीन्द्र राष्ट्र को परिभाषित करते हुए कहते हैं भूमि, भूमिवासीजन तथा जन संस्कृति इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बना है।[6]

4) रहस्यगीत : इन गीतों में कवि अथवा साधक किसी सर्व शक्तिमान अज्ञात सत्ता के प्रति आत्मसमर्पण की भूमिका ग्रहण करता है। माधुर्य भावना के कारण मिलन विद्यापित के पदों में दिवाभिसारिका, निशाभिसारिका के दोनों स्वरूप कृष्णाभिसारिका, शुक्लाभिसारिका सबका वर्णन मिलता है। कवि ने पदावली के अंतर्गत राधा के विरह वर्णन करने के लिए बारहमांस शैली को अपनाया है। यही शैली कालांतर में जायसी के यहाँ से होती हुई हीतिकाल के कवियों के यहाँ पहुँच गई। कवि ने इसे लोकगीतों से ग्रहण किया है। पदावली में संगीत के योग से उत्तम गीतियों का आदर्श उपस्थित हो जाता है। इनमें कल्पना, मनोवैज्ञानिक अध्ययन, सौन्दर्यविधान, अलंकार, तथा संगीत की विचित्र योजना मिलती है। ये पद लोकभाषा में लिखे गये हैं। कवि मानव हदय का सचा परखी है। यह तो सर्वविदित है कि विद्यापति ने गीतियों के अंतर्गत और बहिरंग दोनों को परिष्कृत किया और हिन्दी साहित्य को प्रथम सफल गीतिकार के रूप में गौरवान्वित किया।

विद्यापति लोकन्मुखी गीतों के सर्जक थे, उनके पदों मे एक ओर तो सहज जनाग्रही राग और भावात्मक उत्कर्ष सन्निहित है तो दूसरी और भक्ति और दर्शन के उदात्त वैचारिक मंथन भी समाविष्ट थे, यही कारण है कि विद्यापति जन सामान्य से लेकर बुद्धिजीवियों तक समान रूप से लोकप्रियता के शिखर पर रहे थे।

साहित्य में काव्यानुशासन की व्यवस्था को बनाए रखना तथा साथ ही सांगीतिक

शास्त्रीयता का भी निर्वहन करना एक कठिन परिश्रम साध्य कार्य है, फिर उसे जानग्रही रुझान के साथ जोड़ना तो और भी कठिन है, किन्तु विद्यापति में ये सभी विशेषताएँ सन्निहित है।

कबीर दास :

कबीर अपने समय के प्रतिनिधि समाजसुधारक क्रांतिकारी कवि थे जिन्होंने परम्परागक रूढ़ियों की जटिल शृंखलाएँ तोड़कर एक स्वच्छन्द और सर्वग्राह्य मार्ग प्रशस्त किया था। शोषित, दमित और सर्वहारावर्ग के पक्ष में हिमायत करनेवाले कबीर बड़े ही निर्भीक संत थे। उन्होंने साम्प्रदायिक संकुचन और समाज में व्याप्त कुरीतियों का खुलकर विरोध किया था वे अपने समय के सर्वाधिक सक्षम समाज सुधारक थे जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपने प्रभाव में सम्मोहित कर रखा था।

कबीर के पदों में भाषा की अव्यवस्था का कारण सरसता का अभाव है और कहीं कहीं दार्शनिकता के बोझिल समावेश से काव्य की सरसता नष्ट हो गई है, फिर भी जोपद कबीर के भावमय हृदय से अप्रयासनिकले हैं, उन्हें हिन्दी के उच्चकोटि गीतिकाव्य के साथ निःसंकोच रखा जा सकता है। कबीर द्वारा रचित पदों को चार भागों में विभक्त किया गया है नीतिविषयक,सिद्धान्त और ज्ञानोपदेश सम्बधी, विरह तथा आत्म निवेदन पूर्ण और वर्तनातीत। विरह और आत्मा निवेदन के पदों में ही मनोज्ञ गीतियों की सृष्टि हुई है। इनकी भाषा हमेशा प्रचलित ब्रजभाषा ही रही है, किन्तु भाषा में अन्यान्य भाषाओं के शुद्ध रूप भी प्रचुर मात्रा में समाविष्ट है।

कबीर के बीजक में लोक प्रचलित शैलियो में भी गीत मिलते हैं। साँप का विष उतारने के लिए विरहुली नामक गीत गाया जाता है, बीजक में भी बिरहुली का समावेश है। इसके आलावा प्राचीनकाल में चर्चरी गीत काभी अत्पन्न प्रभावथा, कबीर के गीतों में इस का भी प्रभाव देखने को मिलता है, लोग इसे बड़े चाव से गाते हैं। इसके लिए कोई निश्चित छन्द नहीं था। कबीर ने भी अन्य सन्त कवियों की भाँति जनसाधारण में प्रचलित काव्य रूपों को ग्रहण किया है। इनका वर्णन भी अपभ्रंश के फागु की तरह है, जिसका अर्थ है पद। इससे यह स्पष्ट होता है कि कबीर भी गीतात्मक रचनाएँ लोक-गीतों से लेकर साहित्यिक पदों तक फैली है।

मीरा :

मीरा के द्वारा रचे गये पदों में स्वानुभूति भावनाएँ भी अभिव्यक्ति हुई हैं। मीरा मूलतः माधुर्यभाव की उपासिका रही है। उनकी आत्माभिव्यंजना में उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप है। नारी हृदय की कोमलता, आत्मविभोरता, कातरता तथा स्वानुभूति और रागानुभूति की तरलता जो मीरा के काव्य में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी विरह व्यथा में नहीं, हृदय की गहराई है। उनके हृदय की वेदना का अनुमान वही लगा सकता है जो स्वयं उस विरहाग्नि मे झुलस चुका है यथा

हे री मैं तो प्रेमादिवानी, मेरो दरयन जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणे, कि जिणा लई होय।
दरद की मारी बन बन डोलूँ बैद मिल्या नहीं कोय।
मीरा के प्रभु पीर मिटेगीं, जब वैद संवलिया होय॥

मीरा की प्रेमभावना इतनी स्वच्छन्द है कि वह लोकलाज को त्याग कर प्रेम के पथ पर निर्भीक होकर चल पड़ी है। मार्ग की बाधाओं की उसे कोई चिन्ता नहीं प्रेमकी भूमिका पर अनुभूति की ऐसी महानता तथा निर्भयता हमें सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में मीरा के अतिरिक्त कहीं और नहीं दिखाई पड़ती। प्रेममयी मीरा की आत्मलीनता इतनी प्रगाढ है कि वह राजकुल की होकर भी राजपथ पर अपने पैरों में घुँघरू बाँधकर नाँच गा रही थी यथा -

पग घूँघरुं बाँध मीरा नाची रे
मैं तो अपने नारायण की आप ही हो गयी दासी रे
लोग कहें मीरा भई बावरी, न्यात कहे कुलनासी रे।[12]

मीरा का सम्पूर्ण काव्य गेय तथा गीतिकाव्य की सभी विशेषता से युक्त है। संगीत की कल्याणकारी शक्ति से मीरा ने पूर्ण लाभ उठाया है। शब्द चयन की भूमिका पर उसके पदों के एक एक शब्द भावना के तारल्य से ओतप्रोत है। गीत की प्रत्येक पंक्ति के साथ जब उसकी भाव विकलता क्रमशः बढ़ती हुई अन्तिम पंक्ति में चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो जाती है तब ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रेमभावना में विभोर होकर मीरा भावातिरेक से सहसा मौन हो गयी हों और यहीं मीरा अपने गिरधर नागर को आत्म समपर्ण कर देती है।

गीत के विकास में रामभक्ति काव्य-धारा का काफी अपना एक विशिष्ट योगदान रहा है। इसके अंतर्गत गोस्वामी तुलसीदास आते हैं इनके द्वारा रचित काव्य में गीत-शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। रामचरित मानस में देवताओं की स्तुति के जो अंश हैं, वे गीत साहित्य के अंतर्गत स्त्रोत काव्य में आये हैं। इनकी गीतियाँ कुछ राम-कृष्ण के जीवन से सबंधित हैं, कुछ दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन प्रस्तुत करती हैं, कुछ देवों की स्तुति के लिए हैं और कुछ का लक्ष्य है विनय और आत्म निवेदन। केवल विरह और आत्मनिवेदन के पद ही उत्तम गीति की श्रेणी में आते हैं, गीतावली कृष्ण गीतावली तथा विनय पत्रिका पूर्णता गीति रचनाएँ हैं, दोहावली हनुमान बाहुक तथा सवितावली में यह पद गीतों की सृष्टि हुई है।

तुलसी के काव्य में लोकगीतों की मधुरता व्यंजित होती है। राम के जन्म अवसर पर रचित गीत में लोकगीत का माकुर्य सहज विद्यमान है-

सहेजी सुन सहेली रे

सोहिलो सोहिलो सोहिलो सोहिलो सब जग आज ।

भारतेन्दु युग – गीतिकाली की पुन प्रतिष्ठा का काल :

भारतेन्दुजी ने क्षीणवती गीति काव्य धारा का पुनरुद्धार किया भारतेन्दु जी के गीति काव्य में दो धाराएं स्पष्ट हैं - एक तो विद्यापति चंडीदास सूर तुलसी द्वारा प्रतिपादित परम्परा की प्राचीन शैली को जिस के अंग प्रत्यंग में उनके निजी आत्मनिवेदन की मधुरिमा झलक रही है। ऐसे पद स्फुट भी हैं और कुछ चन्द्रावलि नाटिका में मिलते हैं-

पिय तोहि कैसे हिये राखों छिपाई (चन्द्रवालि अेकप)

इस के साथ ही भक्ति सम्बन्धी गीत भी मिलते हैं

जा तन मन से रमि रहे तहाँ ग्यान क्यों आवे।[15]

दूसरी शैली के अंतर्गत राष्ट्रीय गीत आते हैं जिसमें उनके राष्ट्रप्रेम की उदात्त भावना प्रकट हुई है। यथा-

आबहु रोबहु सब मिलि भारत भाई ।

हा हा भारत दुर्दशा देखी न जाई ॥[16]

भारतेन्दु जी आधुनिक युग के प्रणेता के साथ-साथ गीतों की पुनः प्रतिष्ठा के स्थापक भी हैं। महादेवीजी की ये पंक्तियाँ भारतेन्दु पर सत्य उतरती हैं। भारतेन्दु तेजपुंजन नक्षत्र थे, अनेक काव्य उनके प्रभविष्णु व्यक्तित्व से साहित्यिक विधाओं के रूप में प्रगड़ित हुआ। वर्तमान गीतिधारा उनकी ऋणी है मनोभावों के चित्रण भी पुनःस्थापना के रूप में गीतिकाव्य के विकास में भारतेन्दु का स्थान निश्चित है।[17]

भारतेन्दु युग में पद पदिकाओं के माध्यम से गीति काव्य को प्रोत्साहन मिला गीतिकाव्य को पुनःप्रतिष्ठित करने के लिए अन्य कवियों ने भी अपना योगदान दिया - भारतेन्दु मण्डल के अन्य कवियों में गीतिकाव्य की दृष्टि से रामकृष्णदास, सुधाकर द्विवेदी, अंबिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, राधा चरण गोस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी गीति रचनाएँ इतिवृत्तात्मक अधिक है, भाव प्रवण कम ।

भारतेन्दु मण्डल के कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी गीतिधारा को नवजीनव से अलोड़ित किया, इन कवित्तों के श्रीधर पाठक, जगमोहन सिंह, सत्यनारायण, कविरत्न आदि की वस्तु योजना में सूर की आत्मभिव्यंजना, मीरा की कसक तथा घनानंद की मर्म स्पर्शिता निहित है।[19]

भारतेन्दु के पदों में जो सबसे विशिष्ट गुण दिखाई पड़ा वह है, गीतात्मक उद्रेक। कहाँ कसूणनिधि केशव में हृदय का सच्चा उद्गार अभिव्यक्त हुआ - पदों में बरखा, लावनी, ठुमरी आदि की शैली का योग्य काव्य रूप की दृष्टि से बिलकुल नवीन प्रयास सिद्ध हुआ, इसी प्रकार दूसरी ओर बाह्य प्रभाव के अनुरूप गजलों की रचना भी काल क्षेत्र में नवीन बात दिखाई पड़ी।[20]

द्विवेदी युग : संवत 1950 से 1975 तक की समयावधि में फैले इस कालखण्ड में हिन्दी कविता को पुनः प्रतिष्ठा खड़ी बोली में हुई। आधुनिक हिन्दी काव्य का यही कालखण्ड द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में हिन्दी कविता देश और समाज की समष्याओं से सम्बद्ध होकर जातीय जन जागरण की वाहिनी बनी ।

इस युग की मुख्य विशेषता यह थी कि देश प्रेम की भावना को सर्वोच्य वाणी मिली, अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह सामाजिक उत्थान और समाज सुधार, सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए पौराणिक आख्यानों में कवियों की अभिरूचि संस्कृति वर्ण छन्दों

के साथ नियमों का पालन करते हुए कविताएँ लिखना तथा नारी के सम्मान की भावना को सर्वोच्चता का स्थान दिया गया। इसके साथ ही समाज में नारियों की स्थिति का सुधारने का प्रयास किया गया। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण की ओर इस युग के कवियों की दृष्टि पहली बार आकृष्ट हुई।

द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों मे श्रीधरपाठक, नाथूराम शर्मा शंकर, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त, पं. रामचरित्र उपाध्याय, पं. गिरिधर शर्मा नवरत्न, पं. लोचन प्रसाद आदि उल्लेखनीय है। इस के अतिरिक्त द्विवेदी युग के अन्य कवियों मे प. गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, पु. माखनलाल चतुर्वेदी, पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन रामनरेश त्रिपाठी, श्याम नारायण पाण्डेय, ठा गोपालशरणसिंह, सियारामशरण गुप्त आदि महत्वपूर्ण कवि हैं।

द्विवेदी जी संस्कृत छन्दों के बड़े हिमायती थे, इन्हों ने इस सम्बन्ध में कई लेख लिखे और संस्कृत छन्दों में भी कविता की। संस्कृत काव्य और उसी के अनुकरण पर रचित प्राकृत अपभ्रंश काव्य भी हमारा पुराना काव्य है, अतः हमारे वर्तमान काव्य क्षेत्र में यदि अनुभूति की स्वच्छंदता के द्वारा प्राकृत पद्धति पर अर्थात परपंरा से चले आते हुए मौखिक गीतों के मर्मस्थल से लेकर चलने वाली वो अधिक सजीव और स्वच्छंद कविताएँ होती

छायावागदी युग :

गीतिकाव्य की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी का यह स्वर्णिम काल है। छायावाद के मुख्य चार स्तंभ माने जाने वाले जयशंकर प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने प्रकृति तथा प्रेम के उपादानों को लेकर अनेक गीत रचनाएँ भी हैं।

छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी आदृष्य या आधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यान्तर प्रभावसाम्य लेकर हम अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है, ऐसे अप्रस्तुत अधिकार उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् होते हैं। जैसे सुख, आन्द, प्रफुल्लता, यौवन काल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप, श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद, अतः मार्धुय के स्थान पर मधु, कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण, विषाद, अवसाद के स्थान पर अंधकार, अंधेरीरात, संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ अस्थान पर झंझा, तूफान, भावरंग के लिये झंकार, भावप्रवाह

के लिये संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि आभ्यंतर प्रभावसाम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की वास्तविक विशेषता है।

छायावाद की रचनाएँ गीतों के रुप में ही अधिकतर हुई हैं। इस से उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है, जहाँ यह अन्विति होती हैं वहीं समूची रचना अन्योक्ति पद्धति पर की जाती हैं। इस प्रकार साम्य भावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं। छयावाद की प्रवृत्ति अधिकतर प्रेमगीत्मक होने के कारण हमारा वर्तमान काव्य प्रसंगों की अनेक रूपता के साथ नई नई अर्थभूमियों पर कुछ दिनों तक बहुत कम चल पाया, अतः छायावाद में गीतों के रुप में किरन, लहर, मधुदान तथा कामिनी की क्रीड़ा इत्यादि की परिणत रूपदिखाई पड़ते हैं।

जो नई कविया के रूप में गीत, नवगीत निरंतर अविरल प्रवाह के साथ आगे बढ़ती रहती है।

प्रथम पड़ाव :

नई कविता के समानान्तर नवगीत, आधुनिकगीत, नयी कविता का गीत, आज का गीत आदि की चर्चाएँ छटे दशक के आरंभ से ही सर्वत्र होने लगी थीं किन्तु इस की स्पष्ट रुप से घोषणा सन 1957 इ. में हुई जब इलाहाबाद, साहित्य सम्मेलन में वीरेन्द्र मिश्र ने नयी कविता नयागीत मूल्यांकन की सीमाएँ शीर्षक आलेख पढ़ते हुए द्योषित किया कि हिन्दी में नये गीतकार का जन्म हुआ है। यह नया गीत फार्म और कण्टेंट दोनों ही पक्षों में समृद्ध हुआ है। यह विचारणीय है कि आज की विज्ञापन काव्य शैलियों की चकाचौंध में कहीं हम गीत की दिशासे सम्पन्न हो रहे प्रयोगों तथा जागरूक शक्ति को भुलाए तो नहीं दे रहे हैं।

प्रथम पड़ाव में नवगीत का स्वर मुख्यत लोकगीतात्मक नवरोमानी और आचालिक तरोताजगी से परिपूर्ण। बहुत कम गीतों में सामाजिक यथार्थ, वही वैषम्य और मूल्यगत टक़राव अभिव्यक्त हुए हैं फिर इन गीतों का तेवर भी आंचलिक राग वालेगीतों से कुछ अलग हैं, इस तरह प्रथम चरण के नवगीतों में भावबोध तथा कलाबोध दे दो छोर दृष्टिगत होते हैं।

प्रथम चरण के नवगीतों की भाषा भी परिनिष्ठित तथा परिमार्णित है। नये मुहावरे तथा व्यंजना प्रधान आंचालिक शब्दावली का अधिकाधिक प्रयोग इसकाल के नवगीतों में मिलता है,

गीत में सहजन, पलाश, अमलताश, गुलमुहर, टेसू आदि का मोहक वर्णन हुआ है।

प्रथम दशक की नवगीत यात्रा नयी कविता वादियों के विरोध को सहते हुए भी अनवरत बनी रही, अन्ततः मुक्तिबोध ने कृति के फरवरी 60 वाले अंक में उसके अस्तित्व को स्वीकारते हुए साफ साफ लिख दिया कि गीत का नयी कविता से कोई विरोध नहीं, नयी कविता को उसके विरुद्ध अपने को प्रतिष्ठित करना चाहिए ।

इस चरण के नवगीतकारों में शम्भुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, रामनरेश पाठक, रामचन्द्र, चन्द्रभूषण, रवीन्द्रभ्रमर, रामदरश मिश्र आदि प्रमुख हैं। इन के अलावा केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, डॉ. जगदीश गुप्त, कुँवर नारायण, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, सदन वात्सायन, श्रीकान्त वर्मा, दुष्यन्त कुमार, रामसिंह, देवप्रकाश गुप्त, राजेन्द्र किशोर, शिव बहादुर सिंह भदौरिया आदि ने भी इस दशक के नवगीतों की रचना की।

प्रगतिवादी गीतों में जहाँ गीतिकाव्य को एक नए में रूप में व्यास्थापित किया है, वहाँ यह भी सिद्ध कर दिया है कि गीत वास्तव में एक सहज और लोकप्रिय काव्य रूप है, जिसके माध्यम से किसी भी विषय वस्तु को जनमानस तक प्रेषित किया जा सकता है। सामाजिक यथार्थ अथवा किसी भी नये मूल्यों की अभिव्यक्ति गीतों में सहज ही हो सकती है। इस दृष्टि से परम्परागत लोकगीत प्रगतिवादी कवियों को प्रेरणा देते हैं। लोकगीतों की अभिव्यक्ति प्रायः सामूहिक सुख दुख की भूमिका पर ही हुई और उनका आधार सामाजिक यथार्थ ही है। प्रगतिवादी गीतकारों की मान्यता है कि युग के यथार्थ का संस्पर्श करने वाले साहित्यिक गीतों की सृष्टि भी की जा सकती है। प्रगतिवादी गीतकारों ने इस दिशा में सरादनीय प्रयोग भी किया है। इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है -

धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में
आनाजी बादल जरूर
चन्दा को बाँधेंगे कच्ची लड़ियों में
सूरज की सूखी रेत में
आना जी बादल जरूर ।

छायावादी तथा प्रगतिवादी युग के प्रणय गीतों में एक विशेष अन्तर यह है कि छायावादी कवियों ने सहज मानवीय प्रेम को रहस्य के अवगुंठन से अशरीरी बनाने की चेष्टा की है तथा वर्णन की प्रतीकात्मक पद्धति एवं व्यंजना के लाक्षणिक विधान के द्वारा सीधी और सहज प्रणयानुभूति को एक पहेली के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इस के विपरीत प्रगतिवादी गीतकार अपनी रूमानी अनुभूतियों को सामाजिक प्रवृत्ति मानकर उसकी अभिव्यक्ति को किसी भी प्रकार से गोपनीय बनाने का प्रयत्न नहीं करता। यही कारण है कि उसकी प्रेम की उन्मुक्त एवं सहज अभिव्यक्ति उसके गीतों को एक नई गरिमा से युक्त करती है।

प्रगतिवादी कवियों ने अपने गीतों में प्रणय को जीवन की एक महत्तम शक्ति तथा एक शाश्वत सत्य के रूप में अभिव्यक्ति दी है किन्तु उसे जीवन का एक मात्र सत्य स्वीकार नहीं किया है। इनके गीतों में प्रेम स्वस्थ और सन्तुलित रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। प्रगतिवादी कवियों की प्रणय भावना न छायावादी कवियों की तरह वायवी है और न ही छायावादोत्तर प्रेम की तरह सामाजिक मर्यादा से उन्मुक्त प्रयोगवादी कवियों की तरह कुत्सित यार्थाथवादी अथवा ऐंटी रोमेटिक दृष्टिकोंण भी हमें प्रगति वादी काव्य में नहीं मिलता । प्रगतिशील गीतों में एक ओर जहाँ प्रेम, स्वच्छन्द तथा स्वस्थ भूमिका में अभिव्यक्ति ग्रहण करता है तो दूसरी ओर यर्थाथवादी दृष्टि के प्रभाव से भी मुक्त होकर अपने स्वरूप का उदघाटन करता है। यथा -

यों ही कुछ मुस्कराकर तुमने
परिचय की वह गाँठ लगादी
था पर मैं भूला भूला
फूल उपेक्षित कोई फूला
जाने कौन लहर दी उस दिन
तुमने अपनी याद जगादी ।

प्रगतिशील कवियों की दृष्टि में स्वस्थता है। इसीकारण प्रेम की अभिव्यक्ति इतनी सहजता से कहने में समर्थ हैं।

प्रारंभिक छायावादियों के गीत बहुचर्चित हैं, गीत प्रभावन्वित गोपालसिंह नेपाली के गीत से होती है, पंक्ति पंक्ति प्राणवान है-

कनखियों से न कोई निहारा करे
मन दुबारा तिबारा पुकारा करे।
अंगभर में न मेंहदी उभारा करे
मन दुबारा तिबारा पुकारा करे ।

पं. नरेशशर्मा कहते हैं-

नवयुग की दुलहन बैठी है
खंडहर हुई खेती में
नई सुबह हंसती है, उसकी
मेंहदी लगी हथेली में,

भवानी प्रसाद मिश्र के बोल हैं -

तुम्हें काम है किन्तु एक क्षण
पास बैठ जाने की इच्छा मन में है।
बहुत पास हूँ किन्तु एक क्षण
और पास आने की इच्छा मन में है।

शंभूनाथ सिंह जी पंक्तियाँ हैं -

सोन हंसी हंसते हैं लोग
हँस हँस कर डसते हैं लोग
भूतों के महलों में
हंस हंस कर बसते हैं लोग।

भरत व्यास करते हैं -

जब तक रवि में किरन, किरन में ज्योति
ज्योति में भव जीनव है।
जब तक घन में वज्र, वज्र में प्रलय
प्रलय में उद्वेलन है,
तब तक धरती के सर पर

अंगड़ाई लेता आसमान हूँ
तब तक जिन्दा हूँ, जवान हूँ॥

बलवीर सिंह रंग के बोल हैं -

निर्झरों नदियों तड़ागों की प्रकृति को साधुवाद
सिंधु में ठहरे हुए तूफान की चर्चा करें,
पहले मरूभूमि में उद्यान की चर्चा करे।

नंद चतुर्वेदी कहते हैं-

इस तरह जिसने लिखा संवाद
रह गया संशय, दहन अवसाद
इस कथानक में बंधा है कौन
आखिरी उस आदमी तक जा
गा हमारी जिन्दगी कुछ गा।

ठाकुर प्रसाद सिंह कहते हैं -

नीर जामुनी याद तुम्हारी
खनकी कंगन बोल सी ।

नीरज कहते हैं -

आंगार अधर पर घर मैं मुस्काया हूँ
मैं मरघट से जिन्दगी बुलालाया हूँ
हूँ आंख मिचौली खेल चुका किस्मत से
सौ बार मृत्यु के गाल चुम आया हूँ।

मुकुट विहारी सरोज का गणित देखिये -

हो गया है हर इकाई का विभाजन
राम जाने गिनतियाँ कैसे बढ़ेंगी ?
अंग अपने आपमें पूरा नहीं है
इसलिए कैसे दहाई को पुकारें ?

मात अवमूल्मत हुआ है सैंकड़ो का
कौन इस गिरती व्यवस्था को सुधारे ?

जाड़े बाकी एक से दिल में लगे हैं

रामजाने पीढ़ियाँ कैसे पढ़ेंगी ?

ज्ञानवती सक्सेना लिखती हैं -

कंचन काया, कंचन माया
सुनते सुनते सब गई मैं
भँवर चीर कर तैर रही थी
नाव देखकर डूब गयी मैं
संघर्षो ने गोदगोद कर
मुँझे बाँसुरी बना दिया है
डुंगाली रखते ही गूजूँगी
पर मै जपूगीं नाम तुम्हारा
मैने तुम को नहीं पुकारा ।
भारत भूषण लिखते हैं
आँखो को निर्जल जल पीते
बरसों बरसों बरसों बीते,
हर शाम लौटकर घर आये
मगर मा रोते रोते
चलमन उसके ही बाहर चलें
मंदिर के बहार भक्ति भरी
शायद प्रसाद बाँटती मिले।

स्नेहलता लिखती हैं -

जितना ऊँचा प्यार तुम्हारा उतनी ऊँची व्यथा पुरानी ।
एक साथ कैसे निभ पाएँ, सूनाकर और अगबानी ॥

किन्तु जिन्दगी अनुबंधों के अनचाहे आश्रय गहती है
क्या क्या कहना क्या क्या सुनना
क्या क्या करना पड़ता है
जीकर देख लिया, जीने में कितना मरना पड़ता हैं

राजेन्द्र प्रसाद सिंह करते हैं -

नौका तुम गई और आगे
रेत रेत ही गई नदी
लौटूँ तो खींच डुबो देगी
दलेदल में बीसवीं सदी ।

राम स्वरूप सिन्दा लिखते हैं -

सूर्य की शिष्टांत यादा पर चल्ला हूँ मैं
एक रक्षा चक्र में नटवशिख ढला हूँ मैं,
मै दिलोचन स्वपनवादी जागरण मैं हूँ।

विधानंद राजीव करते हैं -

हिंसक मौसम है
नदिया भी निगल गया कल कल
आज हमारे भीतर बाहर मसूमल ही मसूथल

राम मनोहर द्रिपाठी लिखते हैं -

शायद मेरे गीत किसी ने गाए हैं,
इसीलिए वे मौसम बादल हाए हैं ।

देवेन्द्र शर्मा इन्द्र कहते हैं-

नाविकों की बस्तियों में
घिर रहे काले अँधे रे
क्या पता आएँ न आएँ
लौट कर वापस मछे रे

अभी द्वीपो से जलधि तक
सेतु हमको बाँधने हैं
पाँव की चड़ में सने हैं ।

जैसा कि विगत पृष्ठों पर स्वष्ट किया जा चुका है कि गीत और नवगीत दोनों ही काव्य के रूप हैं, छन्द हैं, रागबद्ध है, लपबद्ध है, और मानव जीवन से चतुर्धिक संलगन हैं।

यहाँ हम पुनः नवगीतों के वैशिष्ट्य को रेखांकित करना चाहेंगे जहाँ नवगीत परम्परित गीत अविधारा से अथनी पहचान बना पाया है, नवगीत का सम्पूर्ण वृत्त उसकी आन्तरिक संचेतना और उसका बाह्य रूप दोनों ही तथ्य उस की विशिष्ट संज्ञाको परिभाषित करते हैं नवगीतों को विशेष रूप से रेखांकित करने के लिये निम्नांकित तथ्य ध्यातव्य है-

1) नवगीत में नये प्रयोगों की संभावनाएँ ।
2) सामयिक बोध का औचित्य
3) सामाजिक सरोकार
4) राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संचेतना के नये स्वर
5) नवीन छन्द प्रयोग
6) भाषा के बदलते तेवर
7) व्यंग्य का औचित्य पूर्ण प्रयोग
8) आन्तरिक संचेतनाओं के साथ सौन्दर्यवादी अभिगम
9) वैशिक धरातल पर सोच का विस्तार
10) मानवीय संवेदनाओं का संस्पर्श
11) मानसिक उद्वेगों का प्रस्फुटन
12) आम आदमी की उपस्थिति
13) कमजोर वर्ग का प्रतिनिधित्व तथा उस का मौलिक एवं नवीन स्वरूप ।

नवगीत की मौलिक उद्भावना काव्यगत नवीनता को हम मौलिक उद्भावना कह सकते हैं-

- प्रयोग का औचित्य है।

आधुनिकता शब्द से यह ध्वनि निकलती है--- नूतन संवेदनाओं का प्रवेश उसमें होता है, वस्तुत आधुनिकता में तात्कालिक और सशक्ति से वह संलग्न है।

इस प्रकार की समग्र संचेतनाएँ नवगीत में दृष्टिगत होती हैं क्योंकि इन नवगीतों में .अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तर पर एक रसता का एहसास लगातार बना रहता है, आधुनिकता में साहित्य की भाषा के नवगीत का यही रुप है। सम्पूर्ण वृत्त का परीक्षण किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि गीत और नवगीत दोनों में ही एक तात्विक समानता तो है ही नवगीत गीतों के तत्वों से समन्विन है। सशक्ति समान रूप से हैं। कथ्य और प्रस्तुति के आधार पर नवगीतकारों ने इस आधुनिक बोध को अलग अलग स्तरों पर प्रस्तरित किया हैं इनमें नवीन उपमान तथा मौलिक प्रतीकों के विधान संवेद्य होते हैं जो कथ्य को अधिक प्रस्तार देने के लिए उपयुक्त होते हैं। जैसे -

सुनो तथागत एक नया युग आने वाला है
लोग मरेंगे
और तुम्हारा बोधि वृक्षभी
नहीं रहेगा
अगला युग तो
हरियाली की
पोथी वाली बात कहेगा
तितली की
अगली नस्लों का रंग भी काला है।[22]

इसी तरह ये पंक्तियाँ भी देखिये -

हाँ, समय अब आ गया है
हम नया सूरज उगाये
मंद विजय नये युग का
क्योंकि पिछली बातें हुई बासी
जिन्हें पूजा, देव थे सब
हुए कपटी और विलासी
आओ मिलकर
नया मन्दिर ढाई आखर का बनायें[23]

इन्हीं अनुभूतियों को प्रकारान्तर से नयी अर्थवत्ता में सजीश कौशिक कहते हैं -

सन्नाटों से भरी हुई इन मीनारों में
शब्द व्यथित हो विला गये हैं,
अन्तर मन की पीड़ा जब कविता गढ़ती है
पर नई दहशत की
होठों पर चढ़ती है
शर्प भेष घर कई लुटेरे
रोज लूट कर सपनों वाला किला गये हैं।[24]

नई उद्बोधना को अपने अलग आवाज में व्यक्त करने वाले विष्णु विराट वर्तमान प्रदूषित सामाजिक अर्थवत्ता को नकारते हुए अपने अंदर के इंकलाब को इस तरह व्यक्त करते हैं -

दम घुटा जाता है भीतर, भीतर
खिड़कियाँ खोलिये हुजूर
आपके काँच के चहेरे की चमक
हमारे हाथ के पत्थर तक है,
यह न सोचो यह आग यह लपटे, यह्वादसा
इसी शहर तक है,
ये वो आँधी है
जो सूकती है नहीं
जहर न घोलिये हुजूर।[25]

अपनी जिन्दगी की तमाम हताशाओं को राजेन्द्र काजल इस नवगीत में प्रस्तुत कर रहे है -

दूर तक अपना न कोई
गंध तक सपना न कोई
पड़ गये सबरंग धुंधले
गीत के उन्माद बदले

बंद कमरों की उदासी

कल्पनाओं में संजोई ।[26]

वर्तमान की कठिनाइयाँ नवगीत में बहुत विषद आकार लेकर आलोचकों ने बड़ी भूमिका आद की।

नवगीतों में केवल संत्रास, दमन, शोषण, कष्ट, अभाव, पीड़ा आँसू विलाप जैसे नकारात्मक और उदासी भरे तत्व ही समाहित नहीं होते बल्कि इनमें जीवन के सौन्दर्य को नवगीत का उदधादित करने वाले क्षण भी हैं। इसलिए नवगीत का सौन्दर्य इसी धुंध के बीच विकसित हुआ है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि नवगीत समष्टिगत सहज संवेदनाओं के रागात्मक प्रकाशन है जिसमें समाज के प्रथम व्यक्ति से अन्तिम व्यक्ति तक की उपस्थिति दर्ज है। गीत यहाँ व्यक्ति गत संकुचन के दायरे में अपने अपने राग अलापते रहे हैं, वहीं नवगीत सामाजिक बोध से सरोकार रखते हुए समाज के सम्पूर्ण वृत्त का प्रतिनिधित्व करते है और आम आदमी के सहज जीवन से सुबह होकर सामने आते है ।.

*

सन्दर्भ सूची

1. गीति काव्य का उदगम और विकास, शिवमंगल सिंह सुमन पृ. 55
2. सूर पूर्व व्रजभषा और उस का साहित्य, डॉ. शिव प्रसाद सिंह पृ. 34-42
3. काव्य के रस, गुलाब राय पृ. 124
4. सामाजिक विवेचन, क्षेमचन्द्र सुमन, योगेन्द्र मल्लिक पृ.54
5. आधुनिक कविता में प्रेम और श्रृंगार, डॉ. रागेय राघव पृ. 61
6. हिन्दी पिता में युगान्तर, डॉ. सुधीन्द्र पृ.29
7. हिन्दी साहित्य कोश भाग -1 पृ. 223
8. सूरसागर यद संख्या 717
9. गीति काव्य का उदगम और विकास, डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन पृ. 196
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य एक चन्द्र, शुक्ल पृ. 53
11. मीरा की प्रेम साधना पद, सं. 160 भुवनेश्वर तीर्थ पृ. 382
12. मीरा की प्रेम साधना पद, सं. 167 भुवनेश्वर तीर्थ पृ. 382
13. काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध, डॉ. उमामिश्र पृ. 135
14. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उन का विकास, डॉ. शंकुन्तला पृ. 228
15. वही - पृ. 229
16. काव्य के रूप, गुलाब राय पृ. 134-135
17. गीति काव्य, राम खेलावन पाण्डेय पृ. 27
18. आधुनिक गीति काव्य का शिल्प विधाएँ, डॉ. मंजु पृ. 92
19. आधुनिक गीति काव्य की शिल्प विधाए डॉ. पृ. 93
20. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, डॉ शकुन्तला दुबे पृ 239
21. नवगीत इतिहास और उपलब्धि, डॉ. सुरेश गौतम पृ. 23
22. सुनो तथागत, कुमार रवीन्द्र पृ.16
23. सुनोतथागत, कुमार रवीन्द्र पृ. 18
24. परत नई ददशत की हलफनामे सुबह के, सतीश कौशिक पृ. 45
25. दम घुटा जाता है, धुम्रवन से लौट आई लाला परियाँ, विष्णुविराट पृ.22
26. जिन्दगी एक त्रासदी, राजेन्द्र काजल पृ. 21